श्वेताम्बर जैन साहित्य की कुछ अनुपलब्ध रचनायें

मधुसूदन ढांकी

समदृष्टा एवं स्पष्टवाक् अन्वेषक (स्व०) पं० नाथूराम प्रेमी ने "कुछ अप्राप्य ग्रन्थ" नामक छोटे, किन्तु उपयोगी लेख में, सुमति वज्रनन्दि, महासेन और प्रभञ्जन की सम्प्रति अप्राप्त रचनाओं पर विचार किया है।[1] इन रचयिताओं के अलावा कुछ और भी प्राचीन दिगम्बर जैन साहित्यिक हुए हैं, जिनके नाम तो हम जानते हैं, परन्तु उनकी कृतियां अनुपलब्ध हैं।[2] ठीक यही स्थिति श्वेताम्बर साहित्य की भी है। यद्यपि हमें श्वेताम्बर वाङ्मय विविध विधाओं एवं विपुल राशि में उपलब्ध है, फिर भी जो रचनायें आज उपलब्ध नहीं हैं, उनके विषय में कहीं ग्रन्थकार का तो कहीं ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है और कहीं-कहीं उक्त उल्लेखों सहित अवतरण भी मिलते हैं। कई स्थानों पर केवल अवतरण ही मिलते हैं; ग्रन्थ अथवा उसके कर्ता का उल्लेख नहीं मिलता है। उपर्युक्त आधारों पर विश्वासपूर्वक यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर वाङ्मय की भी अनेक कृतियाँ काल के गर्भ में समा चुकी हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में आगम ग्रन्थों एवं आगमिक व्याख्यायें (निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, टीका आदि) के अतिरिक्त दर्शन, न्याय, शब्दशास्त्र, चरित्रकाव्य, दूतकाव्य, नाटक आदि विविध विषयों पर भी बहुत कुछ लिखा गया था, जो आज प्राप्त नहीं है। यदि इन सबके विषय में खोज की जाय तो एक विशाल और उपयोगी पुस्तक की रचना सम्भव है।[3] यहाँ तो केवल मध्यकाल के पूर्व के कुछ दार्शनिक धर्मप्रवण या नीतिपरक साहित्य के सम्बन्ध में ही विचार किया जायेगा।

जैन दार्शनिक साहित्य में अग्रचारि, महामति सिद्धसेनदिवाकर (ईस्वी ४थी-५वीं शताब्दी) की सभी रचनायें आज उपलब्ध नहीं हैं। जो उपलब्ध हैं, उनके सम्बन्ध में भी कुछ गवेषकों की धारणा है कि ये उनकी कृतियाँ नहीं हो सकतीं।[4] यहाँ तो हम, सिद्धसेन दिवाकर के बाद के श्वेताम्बर लेखकों की रचनाओं के विषय में ही विचार करेंगे।

मल्लवादि क्षमाश्रमण

सिद्धसेन दिवाकर के अपूर्व दार्शनिक-प्राकृत-ग्रन्थ **सन्मतिप्रकरण** पर द्वादशारनयचक्रक ा र

---

१. **जैन साहित्य और इतिहास**, संशोधित साहित्य माला, प्रथम पुष्प, द्वितीय संस्करण, बम्बई १९५६, पृ० ४१८-४२२।

२. हमारे एक मित्र हाल ही में इस विषय पर कार्य कर रहे हैं। उनका यह प्रकाशन प्रतीक्षित है।

३. आगमिक चूर्णियों में, हरिभद्र सूरि की रचनाओं में, और बाद के वृत्यादि साहित्य में विविध विषयों पर ऐसे अनेक अवतरण मिलते हैं, जिनके मूल स्रोत की संख्या प्रथम दृष्टि से भी बहुत ही विशाल मालूम होती है।

४. जैसे कि **न्यायावतार**, और **द्वात्रिंशिका** क्रमांक २१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मल्लवादि सूरि (ईस्वी षष्ठम् शताब्दी मध्याह्न) की संस्कृत टीका आज अनुपलब्ध है।[1] हरिभद्र सूरि के **अनेकान्तजयपताका** (ईस्वी ७६० पश्चात्) में उपर्युक्त टीका से दो अवतरण उद्धृत किए हैं[2], जिनकी शैली मल्लवादि की **द्वादशारनयचक्र** की शैली से बिल्कुल ही मिलती-जुलती है।[3] अभयदेव सूरि की **सन्मति-प्रकरण** पर २५००० श्लोक-प्रमाण संस्कृत टीका (ईस्वी १०२४ पूर्व) में अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त, मल्लवादि की इस टीका का भी आधार लिया गया होगा। अभयदेव सूरि की बृहद्काय टीका के शैलीगत परीक्षण से उसमें मूल टीका का कुछ भाग या अवतरण भी मिल जाना असम्भव नहीं। मल्लवादि की कोई ऐसी ही प्राकृत रचना भी थी, जो आज नहीं मिलती। आचार्य मलयगिरि (ईस्वी १२वीं शताब्दी) ने इसमें से एक अवतरण उद्धृत किया है।[4] हो सकता है कि यह कृति बहुत कुछ "**सन्मति**" के समान रही होगी।

वाचक अजितयशस्

हरिभद्र सूरि की **अनेकान्तजयपताका** पर लिखी स्वोपज्ञ वृत्ति में "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" कथन के सन्दर्भ में "अजितयशा" का उल्लेख हुआ है।[5] उपर्युक्त ग्रन्थ के सम्पादक प्रा० हीरालाल कापडिया ने अजितयशा के विषय में कुछ नहीं कहा है।[6] लेकिन राजगच्छीय प्रभाचन्द्राचार्य के **प्रभावकचरित** (वि० सं० १३३४/ ई० सं० १२७८) के अन्तर्गत् 'मल्लवादि चरित" में अजितयशा को मल्लवादि सूरि का ज्येष्ठ सहोदर कहा है और मुनित्व में उनको सूरिपद से विभूषित

१. मल्लवादि का समय ईस्वी ४ थी या ५वीं शताब्दी नहीं हो सकता, जैसा (स्व०) पं० सुखलालजी और मुनिवर श्री जम्बुविजयजी मानते थे। दूसरी ओर मल्लवादी को विक्रम की ९वीं शती तक खींच लाना भी युक्त नहीं है, जैसा कि (स्व०) पं० जुगलकिशोर मुख्तार ने किया था। (उन्होंने **धर्मोत्तर** पर टिप्पण लिखने वाले, ९वीं शताब्दी के मल्लवादी, जो बौद्ध थे, उनको श्वेताम्बर दार्शनिक मल्लवादी मान लिया था।) मल्लवादी ने निर्युक्तियों में से उद्धरण दिये हैं, इसलिए उनको हम ६ठी शताब्दी के मध्यभाग से पहले नहीं रख सकते और **द्वादशारनयचक्र** (ईस्वी ७वीं शताब्दी उत्तरार्ध) के टीकाकार सिंहसूरि क्षमाश्रमण से वह पहले हो गये हैं।

२. "स्वपरसत्त्वव्युदासोपादानापाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम्।"
"न विषयग्रहणपरिणामा हतेऽपरः संवेदने विषय प्रतिभासो युज्यते युक्त्ययोगात्॥"
(Cf. H.R, Kapadia **Anekāntajaypatākā**, Vol II, Gaekwad's oriental Series, Vol. CV. Baroda 1947, "Introduction" p. 10).

३. यह तथ्य बिल्कुल ही स्पष्ट है।

४. उनकी **आवश्यक-वृत्ति** में मल्लवादी के नाम से निम्नलिखित गाथा उद्धृत है। यथाः

"सङ्गह विसेस सङ्गह विसेसपत्थारमूलवागरणी।
हव्वट्ठिओ च पज्जवनओ च सेसा वियप्पा सिं॥
(Kapadia, "Intro.", p. 10)

लेकिन यह गाथा कुछ पाठान्तर के साथ सिद्धसेन दिवाकर के **सन्मति प्रकरण** में मिलती है। (१.४)। यदि मलयगिरि ने भ्रमवश इसे मल्लवादी का मान लिया तो सम्भव है कि यह मल्लवादी की सन्मति-टीका में से ही लिया गया हो।

५. Kapadia, **Ibid.** pp. LXXIII and 33.

६. Cf. **Ibid.** p. LXXIV.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी बताया गया है।[१] प्रमाणशास्त्र पर उनके द्वारा किसी ग्रन्थ-लेखन की भी यहाँ सूचना है। अजितयशा की यह रचना आज हमारे सामने नहीं है।

प्रभावकचरितकार ने अजितयशा से सम्बन्धित उपर्युक्त सूचना कहाँ से प्राप्त की, यह विचारणीय है। सं० १२९१ (ईस्वी १२३५) को एक अप्रकाशित ताड़पत्रीय हस्तप्रति में अन्य श्वेताम्बर महापुरुषों के चरित्र महापुरुषों के चरित्र के साथ मल्लवादि सूरि का चरित भी सम्मिलित है।[२] क्या यह स्रोतों में से एक होगा ? **प्रभावकचरित** से लगभग १३५ वर्ष पूर्व लिखी गई बृहद्गच्छीय आम्रदत्त सूरि की **आख्यानकमणिकोश-वृत्ति** में भी अजितयशा के सम्बन्ध में ठीक यही बात कही गई है।[३] इस कृति में अजितयशा द्वारा किसी ग्रन्थ की रचना से कुछ वर्ष पूर्व की एक कृति—भद्रेश्वर सूरि की **कहावलि**—में अन्य बातों के साथ वादि अजितयशा द्वारा ग्रन्थ-लेखन का उल्लेख है।[४] ऐसा लगता है कि **कहावलि** का "मल्लवादि चरित" ही प्रभाचन्द्राचार्य के "मल्लवादि-चरित्र" में पल्लवित हुआ है।[५] कहावलिकार ने मल्ल और तीसरे बन्धु यक्ष (जिसने भी मुनि बन कर सूरिपद प्राप्त किया) के साथ ही अजितयशा को भी "परवादि-वारण-मृगेन्द्र" कहा है, जो उनके न्याय-विषयक और दार्शनिक ज्ञान तथा खड्ग सदृश्य तीक्ष्ण बुद्धि का परिचायक है। शोध द्वारा अजितयशा के अन्य अवतरण उनके नाम से अथवा बिना नाम के, मिल जाना असम्भव नहीं।

हारिल वाचक और उनका ग्रन्थ

थारापद्र-गच्छ के वादिवेताल शान्ति सूरि ने, अणहिल्लपत्तन में लिखी गई, स्वकृत **उत्तराध्ययनसूत्र-वृत्ति** (प्राकृतः ईस्वी १०४० पूर्व) में हारिल वाचक के वैराग्यप्रबोधक, दो पद्य उनके नाम सहित उद्धृत किये हैं। यथाः[६]

१. सं० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद कलकत्ता १९४०, पृ० ७७।

२. Ed. C. D. Dalal, **A Descriptive catalogue of Manuscripts in the Jain Bhandars of Pattan,** Gaekwad's oriental Series No. LXXVI, Baroda 1937, pp. 194-195.

३. सं० मुनि पुण्यविजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी १९६२, पृ० १७२-१७३।

४. "नवरं विरइओ अजियजस्सो वायगो निओ पमाणगंथो वि, अजियजस्सो वाइ नाम पसिद्धो।"
Cf. Lalchandra B. Gandhi, "Introdution", **Dvādaśāranaya Cakra of Śrī Mallavādisūri**, Pt. 1 (Ed. Late muni Caturvijayji), Gaekwad's oriental Series, No. CXVI, Baroda 1252, p. 10; एवं सं० मुनि जम्बुविजय, "प्राक्कथनम्" **द्वादशारं नयचक्रम्**, प्रथमो विभाग (१-४ अराः), जैन आत्मानन्द सभा, भावनगर १९६७, पृ० १२), **प्रभावक-चरित** में संस्कृत रूप में यही बात इस तरह मिलती है।"
............सन्ति ज्येष्ठोऽ**जितयशाभिधः** १०॥"
तथाऽजितयशोनामः **प्रमाणग्रन्थ**माहर्य। ३४।" (वही, पृ० ७७-७८)।

५. दोनों ग्रन्थों के पाठों की तुलना से यह स्पष्ट है।

६. भोगीलाल ज० सांडेसरा, **जैन आगम साहित्यमां गुजरात** [गुजराती], संशोधन ग्रन्थमाला-ग्रन्थांक ८, गुजरात विधानसभा, अहमदाबाद, पृ० २१७; तथा मोहनलाल मेहता, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास** भाग ३, वाराणसी १९६७, पृ० ३९२।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथा च हारिलवाचक

चलं राज्यैश्वर्यं धनकनकसारः परिजनो
नृपाद वाल्लभ्यं च चलममरसौख्यं च विपुलम् ।
चलं रूपारोग्यं चलमिह चरं जीवितमिदं
जनो दृष्टो यो वै जनयति सुखं सोऽपि हि चलः ॥

तथा च हारिलः

वातोद्धूतो दहति हुतभुग्देहमेकं नराणां
मत्तो नागः कुपितभुजगश्चैकदेहं तथैव ।
ज्ञानं शीलं विनयविभवौदार्यविज्ञानदेहान्
सर्वानर्थान् दहति वनिताऽऽमुष्मिकानैहिकांश्च ॥

विद्वत्प्रवर भोगीलाल सांडेसरा का कहना है कि प्रस्तुत वृत्ति में एक अन्य अवतरण भी मिलता है, जो रचनाशैली की दृष्टि से हारिल की कृति में से ही लिया गया हो तो असम्भव नहीं ।[1] यथाः

तथा चाहु

भवित्रीं भूतानां परिणतिमनालोच्य नियतां
पुरा यद्यत्किञ्चिद्विहितमशुभं यौवनमदात् ।
पुनः प्रत्यासन्ने महति परलोकैकगमने
तदेवैकं पुंसां व्यथयति जराजीर्णवपुषाम् ॥

थारापद्र-गच्छ का उद्भव हरिगुप्त (हारिल वाचक) की परम्परा में वटेश्वर क्षमाश्रमण (ईस्वी ८वीं शताब्दी प्रारम्भ) को लेकर हुआ था और शान्ति सूरि थारापद्र-गच्छ के आम्नाय में हुए हैं । इसलिए उनका अपनी परम्परा के आदि मुनि की कृति से परिचित होना, और अपने ग्रन्थ-संग्रह में उनकी वह कृति होने की अपेक्षा भी स्वाभाविक है ।

सम्प्रति अध्ययन में इसी कोटि का एक अन्य वैराग्यपरक पद्य भी हमारे देखने में आया, जो हारिल वाचक का हो सकता है । **उत्तराध्ययनसूत्र** की बृहद्गच्छीय देवेन्द्र गणि (बाद में सैद्धान्तिक नेमिचन्द्र सूरि) की **सुखबोधा-टीका** (सं० ११२९/ईस्वी १०७३) में यह बिना नाम के उद्धृत है ।[2] ठीक यही पद्य कृष्णर्षि-शिष्य जयसिंह सूरि के **धर्मोपदेश-मालाविवरण** (सं० ९१५/ईस्वी ८५९ : दूसरे चरण में; थोड़ा पाठभेद के साथ)[3] तथा उनके पूर्व की रचना **आवश्यक-सूत्र** की **चूर्णि** में भी उद्धृत हुआ है[4] । यथाः

१. सांडेसरा, वही ।

२. Cf. Jarl Charpentier, **The Uttarādhyayana Sūtra**, Indian edition, New Delhi 1980, p. 285.

३. सम्पा०, पं० लालचन्द भगवानदास गान्धी, सिंधी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक २८, बम्बई १९४९, पृ० ६२ ।

४. मेहता, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग ३, पृ० ३०४ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वरं प्रविष्टं ज्वलितं हुताशनं
न चापि भग्नं चिरसंचितं व्रतम्।
वरं हि मृत्युः परिशुद्धकर्मणो
न शीलवृत्तस्खलितस्य जीवितम्॥

जर्मन विद्वानों ने इस चूर्णि का समय ईस्वी ६००-६५० के मध्य माना है।[१] किन्तु इस पर जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के **विशेषावश्यकभाष्य** (लगभग ५७५–५८५ ईस्वी) का कोई प्रभाव न मिलने से (स्व०) मुनि पुण्यविजय जी ने इसे भाष्य पूर्व की रचना स्वीकार किया है। परन्तु **आवश्यक चूर्णि** में "सिद्धसेन क्षमाश्रमण" का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने जिनभद्रगणि के **जीतकल्प-भाष्य पर चूर्णि** लिखी है। इसको देखते हुए **आवश्यक-चूर्णि** को सातवीं शती के पूर्वार्ध की रचना मानना ही संगत होगा। ऊपर उद्धृत पद निश्चितरूप से ७वीं शती से पूर्व की जैन-रचना है। इसकी शैली भी हारिल वाचक की शैली के सदृश है। साथ ही पद के सम्भावित समय के आधार पर यह माना जा सकता है कि यह उनकी ही रचना होगी, और यह भी असम्भव नहीं है कि शायद एक ही कृति में से यह सब उद्धृत किया गया हो।

(स्व०) मुनि कल्याणविजय की धारणा थी कि यह हारिल वाचक वही हैं, जिनका समय युग प्रधान पट्टावलि में "हरिभद्र" नाम से वीर निर्वाण सं० १०६१/ईस्वी ५३४ दिया गया है।[२] त्रिपुटि महाराज का कथन है कि पट्टावलिकार ने भ्रमवश "हरिगुप्त" के स्थान पर (विख्याति के कारण) (याकिनीसूनु) "हरिभद्र" नाम लिख दिया है।[३] यह हरिगुप्त वही है, जिनसे कुवलय-माला-कहाकार (सं० ८४५/ईस्वी ७७९) ने अपनी गुर्वावलि आरम्भ किया है और उनको "तोरराय" (हुणराज तोरमाण) से सम्मानित भी बताया है। "हरिगुप्त" का प्राकृत रूप "हारिल" बन सकता है और यदि उनकी स्वर्गगमन तिथि ईस्वी ५३४ हो तो वह तोरमाण के समकालिक भी हो सकते हैं। उपर्युक्त आधार पर हारिल वाचक की यह अज्ञात रचना ६ठी शती के आरम्भ की मानी जा सकती है। यह कृति भर्तृहरि के **वैराग्य-शतक** जैसी रही होगी। इसके उपलब्ध पद्यों में रस और लालित्य के साथ शुद्ध वैराग्य भावना (कुछ खिन्नता के साथ) प्रतिबिम्बित है।

वाचक सिद्धसेन

वादिवेताल शान्ति सूरि ने **"सुखबोधा-वृत्ति"** में वाचक सिद्धसेन के नाम से दो श्लोक उद्धृत किये हैं। यथा:[४]

---

१. यह मान्यता शूब्रिंग, अल्सडोर्फादि अन्वेषकों की है। विस्तार भय से यहाँ उनके मूल ग्रन्थ के सन्दर्भ नहीं दिये गये हैं।

२. "प्रस्तावना", **श्री प्रभावक चरित्र,** [गुजराती भाषान्तर], श्री जैन आत्मानन्द ग्रन्थमाला नं० ६३ भावनगर १९३१, पृ० ५४।

३. **जन परम्परा नो इतिहास** (भाग १ लो) (गुजराती), श्री चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला ग्र० ५१, अहमदाबाद १९४२, पृ० ४४७–४४८।

४. मेहता, **जैन साहित्य का बृहद् इतिहास**, भाग ३, पृ० ३९१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षाय धर्मसिद्धयर्थं, शरीरं धार्यते यथा।
शरीरधाराणार्थं च, भैक्षग्रहणमिष्यते ।।
तथैवोपग्रहार्थाय, पात्रं चीवरमिष्यते।
जिनैरुपग्रहः साधोरिष्यते न परिग्रहः ।।

जिस कृति से ये श्लोक लिये गये हैं, वह या तो विलुप्त है अथवा अभी तक मिल नहीं पाई है।[1] वाचक सिद्धसेन प्रसिद्ध वादी सिद्धसेन दिवाकर से सर्वथा भिन्न जान पड़ते हैं। इनकी कृति में शैली-भेद और विषय की भिन्नता स्पष्ट है। यदि यह सिद्धसेन **जीतकल्पचूर्णि** तथा **निशीथ-मूल-चूर्णि** के रचयिता सिद्धसेन क्षमाश्रमण नहीं हैं तो इन्हें कोई अन्य अज्ञात आगमिक विद्वान् माना जा सकता है। इनकी लेखन-शैली ६ठी-७वीं शताब्दो के बाद की नहीं प्रतीत होती। साथ ही वाचक पदवी भी ६ठी शताब्दी के पश्चात् देखने में नहीं आती।[2]

प्रस्तुत लेख में केवल चार ही प्राचीनकर्ताओं की लुप्त रचनाओं के सम्बन्ध में विचार किया गया है। भविष्य में ऐसी ही कुछ अन्य विनष्ट एवं विलुप्त कृतियों के सम्बन्ध में विचार किया जायेगा।

अमेरिकन इन्स्टीट्यूट आफ इण्डियन स्टडीज,
—रिसर्च डाइरेक्टर, रामनगर, वाराणसी

---

१. विलुप्त मानी जाने वाली कृतियाँ बाद में मिल गई हों, ऐसे बहुत उदाहरण हैं।

२. यह पदवी मध्यकाल में पुनर्जीवित की गई थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org